

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में स्त्री चेतना: एक विचार

रूबी शर्मा, अनुसंधान छात्र, हिंदी विभाग, सनराइज विश्विधालय, अलवर (राजस्थान)

सारांश

हिंदी कथा साहित्य में उषा प्रियंवदा का साहित्य स्त्री जीवन की जटिलताओं, अंतर्द्वंद्वों और बदलती सामाजिक चेतना को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करता है। उनके उपन्यासों में स्त्री केवल पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था की निष्क्रिय इकाई नहीं है, बल्कि वह अपनी स्वतंत्र पहचान, आत्मसम्मान और अस्तित्व की तलाश करने वाली संवेदनशील एवं जागरूक व्यक्ति के रूप में सामने आती है। उषा प्रियंवदा की रचनाओं में स्त्री पात्रों के माध्यम से पितृसत्तात्मक व्यवस्था, पारिवारिक अपेक्षाओं, अकेलेपन, भावनात्मक उपेक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसे प्रश्नों को प्रमुखता प्राप्त होती है। *पचपन खंभे लाल दीवारें*, *रुकोगी नहीं राधिका*, *शेष यात्रा* और *अंतर्वशी* जैसे उपन्यासों में स्त्री जीवन के विविध पक्षों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। उनकी नायिकाएँ सामाजिक रूढ़ियों से संघर्ष करते हुए अपने निर्णय स्वयं लेने की आकांक्षा व्यक्त करती हैं। इस संघर्ष में प्रेम, विवाह, परिवार, करियर और आत्मनिर्भरता के प्रश्न एक-दूसरे से जुड़े दिखाई देते हैं। विशेष रूप से मध्यवर्गीय स्त्री की मानसिक पीड़ा, उसकी अस्मिता और स्वतंत्र अस्तित्व की आकांक्षा उषा प्रियंवदा के उपन्यासों की केंद्रीय विशेषता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उनके उपन्यासों में अभिव्यक्त स्त्री चेतना के विभिन्न आयामों का विश्लेषण करना तथा यह स्पष्ट करना है कि उनकी स्त्री पात्र बदलते सामाजिक परिवेश में अपनी पहचान और स्वायत्तता के लिए किस प्रकार संघर्ष करती हैं।

मुख्य शब्द: उषा प्रियंवदा, स्त्री चेतना, स्त्री अस्मिता, नारी विमर्श, पितृसत्ता, आत्मनिर्भरता, स्त्री संघर्ष, मनोवैज्ञानिक संवेदना, सामाजिक परिवर्तन, हिंदी उपन्यास।

